P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-IV* ISSUE-IV*December-2016
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

गोस्वामी तुलसीदास और श्रीमंत शंकरदेव के काव्य में समन्वयवाद

कुसुम कुंज मालाकार
सहयोगी प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
कॉटन कॉलेज,
गुवाहाटी

सारांश

प्राचीन काल से लेकर आजतक विश्व में जिन महापुरुषों ने जन–जागरण का बीड़ा उठाया है उनमें उत्तर भारत के निवासी संतकवि गोस्वामी तुलसीदास और पूर्वोत्तर प्रांत के निवासी श्रीशंकरदेव जी अन्यतम हैं । इन दोनों ने अपनी वाणी तथा रचनाओं द्वारा जनता में जागृति लाने की कोशिश की । महान पुरुषों का कर्म कभी तोड़ने का नहीं होता वरन जोड़ने का होता है । वैचित्रमय भारत जो सामाजिक और भौगोलिक कारणों से खंड – खंड में विभाजित है उसे एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयास जी –जान लगाकर दोनों ही संतकवियों ने की है । 'एक हृदय हो भारत जननी' कथन का पूर्णतरू पालन ही दोनों का ध्येय था । परम वैष्णव कृष्ण और राम के भक्त दोनों महापुरुषों ने सहज सरल भाषा को अपनाकर अपने कर्म द्वरा मध्यकाल से ही विशाल धर्मप्राण जनता में नवीन प्राण का संचार किया । भारत आज जो कुछ भी है वह उनकी ही बदौलत है । विषम परिस्थितियों का सामना करते हुए धर्म,गुरु,समाज,मानवता का ही नहीं वरन अन्य दिशाओं में भी समन्वय लाने में नैतिक संरक्षक की भूमिका दोनों ने अदा की है । शांति तथा उन्नति में दोनों का योगदान अतुलनीय है । सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन में सुख –समृद्धि चिरस्थायी करने के पीछे उनका –दृष्टिकोण और आस्था उनके गहन अध्ययन और मनन का परिणाम है । महान विचारोकों में जो गुण होते हैं उसे इन दोनों मनीषियों की प्रेरणास्पद वाणियों से ग्रहण कर हम सच्चे जीवन जीने की कला को अपनाकर समाज में समन्वयवाद लाने की प्रक्रिया में अपना योगदान दे सकेंगें ।

मुख्य शब्द : भक्ति–भावना, तुलसीदास, शंकरदेव, काव्य में समन्वयवाद

प्रस्तावना

महान पुरुषों की एक बड़ी विशेषता यह होती है की वे अपने ज्ञान की रोशनी से संस्कृति के साथ साथ समाज के हित साधन करने का बीड़ा खुद उठाते हैं । अपने साथ समाज की मंगल कामना उनका प्रमुख ध्येय होता है । आज हम जिन दो प्रबुद्ध संत महात्मा के काव्य में समन्वय वाद पर विचार करने जा रहे हैं वे दोनों दो अलग–अलग प्रान्तों के होते हुए भी मानवता के कल्याण हेतु उनकी जो वाणी प्रसारित हुई है उसकी प्रासंगिकता मध्यकाल से लेकर आजतक बनी हुई है । दोनों ही महान भक्त कवि हैं । भारतीय संस्कृति की विरासत अनेकता में एकता के दोनों ही पुजारी हैं, साथ ही साथ "एक हृदय हो भारत जननी" के विकास में दोनों ही प्रयत्नरत थे ।

जहाँ तक समन्वयवाद का प्रश्न है हमें सबसे पहले यह जानना होगा की समन्वयवाद का अर्थ क्या है ? सामान्य तौर पर समन्वय का अर्थ है दो या उससे अधिक विभिन्न बातों के बीच एक ऐसी समानता का प्रतिपादन करना जिसके कारण परस्पर विरोध प्रतीत होनेवाली वस्तुओं या तत्वों का अभाव सूचित होने लगे और वास्तविक एकता भी सिद्ध किया जा सके य जो भेद भावों को दूर करके समंजस्य स्थापित करें। वास्तव में समन्वयवाद कोई 'वाद' नहीं है यह एक प्रकार का सुझाव है जिसपर चलने के लिए सभी स्वतंत्र है । समन्वय लाने के दो प्रमुख उपाय हैं । इनमें पहला है विरोधियों के समान तत्वों को मिला देना और दूसरा है विरोधियों के विरोधी तत्वों को निकाल कर बाहर कर देना ।

दोनों महापुरुषो ने जिस मध्ययुग में जन्म लिया था उस समय का समाज में बहुत सारी बुराइयों, विकृतियों से ग्रस्त था । सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक सभी क्षेत्र में अराजकता फैली हुई थी । मनुष्य का मूल्यांकन मनुष्यमात्र से न होकर जातिगत, कुलगत, संप्रदायगत परिचय से होता था । दोनों महापुरुषों ने सभी मनुष्य की तुलना एक विशाल वृक्ष की विभिन्न शाखाओं से की जिसके मूल में जो जड़ है। वह एक है ।दोनों ने कोई नई बात कहने का

दावा नहीं किया परंतु सदियों से चली आई हुई उसी बात को जिसे लोग विस्मृत कर गये थे, उस उपर्युक्त विषय को नये ढंग से जनता के सम्मुख रखा । बुद्धिवाद और हृदयवाद के सामंजस्य पर बल दिया । उत्तर भारत के निवासी गोस्वामी तुलसीदास और पूर्वोत्तर प्रांत के निवासी श्रीमंत शंकरदेव जी ने अपनी वाणी तथा रचनाओं से जनता में जागृति लाने की कोशिश की । परम वैष्णव कृष्ण और राम के भक्त दोनों महापुरुषों ने सहज सरल भाषा को प्रभावान्वित किया । आम लोगों को उसकी शक्ति से परिचित कराया । अपने संतुलित चिंतन से समन्वय का रूख अपनाकर नवीन चेतना का संचार किया । गार्हस्थ और वैराग्य का, वैष्णव तथा शैव मत का ब्राह्मण तथा शूद्र का, काव्य और संगीत का आदर्श और यथार्थ का, प्रबंध और मुक्तक शैली का, साहित्यिक और जनभाषा का समन्वय करने का प्रयत्न किया ।

जब हम दोनों महापुरुषों की जीवनी का अध्ययन करते हैं तब हमें गृहस्थ और वैराग्य का समन्वय दोनों के जीवन में दिखाई देता है । आत्माराम दूबे और हुलसी के पुत्र रामबोला (तुलसीजी) बांदा जिले के अंतर्गत राजापुर ग्राम में पैदा तो हुए पर जन्मते ही इनकी माता का देहान्त हो गया । कुलक्षणी समझकर पिता ने इन्हें त्याग दिया तब एक दाई ने इन्हें पाला–पोसा । जब वह भी मर गयी तो स्वामी नरहर्यानंद (नरहरि दास) ने इन्हें अपने पास रखा और इनका प्रथम नाम रामबोला बदल कर तुलसीदास रखा । इन्होंने काशी में शेष सनातन नामक विद्वान से वेद–वेदांग का विधिपूर्वक अध्ययन किया । अपने घर राजापुर को लौट कर दीनबंधु पाठक की सुशील कन्या रत्नावली से विवाह कर रहने लगे । पाँच वर्ष तक वैवाहिक जीवन व्यतीत करने के बाद पत्नी द्वारा किये गये एक छोटे से व्यंग्य ने इन्हें इतना मानसिक दुःख दिया कि अपनी स्त्री से विरक्त होकर घर से निकल गये और अयोध्या, चित्रकूट, काशी में जाकर साधु–महात्माओं का सत्संग करते रहे । ठीक इसी तरह शंकरदेव के व्यक्तिगत जीवन में झांकने पर हमें ज्ञात होता है की बचपन में ही माता–पिता की छत्र–छाया से वंचित होकर अपनी दादी खेरसुती के आश्रय में वे पले बढ़े । 21 वर्ष की अवस्था में अपनी बिरदरी के लोगों के दबाव में आकर सूर्यवती नाम की अत्यंत सुंदर युवती से शादी करना पड़ा । गृहकार्यों में दक्ष पत्नी के साथ प्रेम सुखी सांसारिक जीवन की शुरुआत कर ही रह थे की एक कन्या संतान को जन्म देकर सूर्यवती बुखार से तपकर स्वर्ग चली गई । इस सदमा से वे विरक्त हो उठे । भगवद् भक्ति को छोड़कर किसी काम में उनका मन नहीं लगता था पर पुत्री मनु का ध्यान कर मन–मसोस कर वैराग्य जीवन बिता नहीं प रहे थे । दसवर्ष की मनु की शादी हरि भूयां नामक युवक से करवाकर 32 वर्ष की अवस्था में तीर्थाटन हेतु भारत भ्रमण के लिए निकल पड़े ।इस प्रकार हम देखते हैं कि इनकी धर्मसाधना कि लोकप्रियता का एक कारण यह भी है कि गृहस्थ–जीवन कि स्थिति को दोनों ने स्वीकार कि है । एकांतिक साधना पर बहुत जोर नहीं दिया गया है क्योंकि यह सबके लिए संभव भी नहीं है ।

उद्देश्य

महान पुरुषों की एक बड़ी विशेषता यह होती है की वे अपने ज्ञान की रोशनी से संस्कृति के साथ साथ समाज के हित साधन करने का बीड़ा खुद उठाते हैं । अपने साथ समाज की मंगल कामना उनका प्रमुख ध्येय होता है । आज हम जिन दो प्रबुद्ध संत महात्मा के काव्य में समन्वय वाद पर विचार करने जा रहे हैं वे दोनों ही अलग–अलग प्रान्त के होते हुए भी मानवता के कल्याण हेतु उनकी जो वाणी प्रसारित हुई है उसकी प्रासंगिकता मध्यकाल से लेकर आजतक बनी हुई है । दोनों ही महान भक्त कवि हैं । भारतीय संस्कृति की विरासत अनेकता में एकता के दोनों ही पुजारी हैं ,साथ ही साथ " एक हृदय हो भारत जननी " के विकास में दोनों ही प्रयत्नरत थे । इसी समन्वय को दिखाना इस लेख का उद्देश्य हैं ।

भक्ति और दर्शन का समन्वय

दोनों ही भक्त–कवि थे । पढ़े लिखे थे । शास्त्रों का ज्ञान भी इन्हें था । इस कारण उन्होंने भक्ति और ज्ञान में भी भेद नहीं रखा । उनके लिए दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । इन्हें अलग करने का अर्थ ही है विनाश की और आगे बढ़ना । यह सब जानते हैं कि तुलसीदास भक्त कवि हैं । उनका सम्पूर्ण काव्य भक्ति भावना से सिक्त है । उन्होंने कभी भी भक्ति और ज्ञान में प्रभेद नहीं किया । वे कहते हैं –

भगतिहि ज्ञानहि नहिं कछु भेदा ।
उभय हरहिं भव संभव खेदा ।। (मानस)

उन्होंने सगुण तथा निर्गुण में एकता पर भी बल दिया और इसमें समन्वय लाने की कोशिश की–

अगुण सगुण दुइ ब्रह्म सरूपा
अकथ अगाध अनादि अनूपा ।। (मानस)

भक्ति तथा सगुण को सर्वोपरि मानते हुए लिखा है –

ग्यान पंथ कृपान कि धारा
परत खगेस होइ नहिं बारा । (मानस)

सगुण पर बल देते हुए लिखा है –

हम सब सेवक अति बड़ भागी
संतत सगुण ब्रह्म अनुरागी ।। (मानस)

शंकरदेव द्वारा प्रचार किये भक्तिधर्म का मूल ग्रंथ है श्रीमद् भागवत गीता और श्रीमद् भागवत पुराण । इसमें माधुर्य भक्ति या मधुर भाव का स्थान बिल्कुल नहीं है । दास्य और वात्सल्य भाव को प्रधानता दी गयी है । इस भक्ति धर्म में नाम, देव, गुरु और भक्त इन चारों को प्राधान्य दिया गया है । सत्संग और मानवता का उत्कर्ष साधन ही इस धर्म का मूल लक्ष्य है । 'भक्ति रत्नावली' में शंकरदेव ने लिखा है –

नाहि भकतित जाति आचार विचार
कृष्ण भकतित समस्तरे अधिकार
एते के भक्तित समस्तरे अधिकार
नाहि वर्णाश्रम आत नियम विचार ।

शंकरदेव द्वारा स्थापित भक्तिधर्म में जाति–धर्म–वर्ण का भेदभाव नहीं है । ब्राह्मण से लेकर चंडाल तक सभी इस धर्म को ग्रहण कर सकते हैं –

ब्राह्मणर चांडालर निबिचारि कुल
दातात चोरत येन –ष्टि एक तुल
विशेषतरू मनुष्यगणत यीटो नरे

विष्णुबुद्धि भावे सर्वदाये मान्य करे
ईरिषा असूया तिरस्कार अहंकार
सवे नष्ट होवे तेवे तावक्ष्णे तार ।
(कीर्तनघोषा)

इन पंक्तियों के जरिये मानवीय अच्छे गुणों को प्राधान्य देकर उसे अपनाने के लिए कहा गया है । नाम धर्म के माध्यम से ईश्वर को प्राप्त करने के लिए ईर्ष्या, हिंसा, दंभ, अहंकार आदि से परे हटकर मनुष्य मात्र से प्यार करना सीखना चाहिए ।

दोनों महापुरुषों ने ब्रह्म का पूर्ण रूप कृष्ण तथा राम में देखा है और नवधा भक्ति के विभिन्न स्तरों को अपनाकर भक्ति कि प्रतिष्ठा पर महत्व दिया है । शंकरदेव ने श्रवण –कीर्तन को जप –तप, जाग –यज्ञ से श्रेष्ठ मानते हुए जीव को मुक्ति प्राप्त करने के लिए इसे अपनाने पर बल दिया है –

अबहु नाइ बुझि शास्त्रक मर्म्म
नामत शरण लेहु सब धर्म्म ।

वैष्णव और शैव मत का समन्वय रू विष्णु को अपना आराध्य मानने वाले 'वैष्णव' और शिव के उपासक 'शैव' कहलाते हैं । यद्यपि यह माना जाता है कि विष्णु पालनकर्ता है तथा शिव संहारकर्ता तथा ब्रह्मा सृष्टिकर्ता है । परंतु कालांतर में तीनों देवों कि कल्पना को हटाकर वैष्णव और शैव – दोनों ही अपने आराध्य देव में उत्पादक, पालन तथा संहारक मानने लगे और धीरे धीरे आपस में विद्वेष भाव पनपने लगा शंकरदेव के पिता शैव मतावलंबी थे । शंकरदेव जब तीर्थाटन के लिए 32 वर्ष कि अवस्था में निकले जब भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों के संत – महात्माओं के संस्पर्श में आकार उनका धर्म – दर्शन, रीति–नीति, आचार दुर्व्यवहार की जानकारी प्राप्त कर व अनेक विचार विवेचना सहित नये तरीके से असमभूमि के लिए उपयोगी एक धर्म की प्रतिष्ठा कर बैठे। इस नव–वैष्णव धर्म में एकशरण नाम – धर्म के प्रचार प्रसार में एक जुट होकर मन रमाकर बैठ गये । उस समय असम के समाज जीवन में तंत्र–मंत्र, जादू–टोना, बलि–विधान आदि का प्रचलन था जिसने समाज को त्रस्त कर रखा था । इस नये धर्म की अभ्युत्थान ने उच्चवर्ण को चौंका दिया, पर समन्वय का सहारा लेकर शंकरदेव ने कहा –

कुकुर चंडाल गर्दभरो आत्मा राम
जानिया सबाको परि करिबा प्रणाम ।

कुत्ता, चंडाल तथा गधे की आत्मा में भी राम है। अपने अनुयायियों को इक्कठ्ठा कर सावधानी बरतने के लिए कहा गया है ———'अन्य देवी – देव नकरिबा सेव'। अन्य देवी–देवता का अस्तित्व तो वे स्वीकारते थे पर विष्णु के अंश रूप इनकी पूजा को नकारते थे । जब पानी डालना ही है तो जड़ों में डालना उचित है पत्तों पर पानी डालने की क्या आवश्यकता है । तुलसीदास के समय में यह भाव इतना व्याप्त हो गया था कि उन्हें समन्वयवादी रुख अपनाकर इस विद्वेष को मिटाना पड़ा । इसी कारण शिवजी के मुख से –

'सोइ मम इष्टदेव रधुवीरा
सेवत जाहि सदा मुनि धीरा '

कहलाकर उन्हें राम का अनन्य उपासक सिद्ध किया । दूसरी ओर राम द्वारा–

संकर प्रिययम द्रोही शिव द्रोही मम दस ।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महूं बास '।

कहलवा कर उन्हें शंकर का अनन्य भक्त व प्रेमी सिद्ध किया । साथ ही साथ राम – रावण युद्ध के समय प्रयाण के वक्त सेतुबंध पर शिवलिंग कि स्थापना करा कर शिव की पंक्ति में आ जाते हैं –

'लिंग थप विधिवत करि पूजा' ।

विभिन्न वादों का समन्वय

शंकरदेव के जमाने का समाज परंपरावादी लोकसमाज था । लोगों में धार्मिक पाखंड एवं कुरीतियाँ फैली हुई थी सहिष्णुता का अभाव चारों ओर व्याप्त था । ऐसे समय में पारस्परिक विरोध को हटाने के लिए शंकरदेव ने अथक प्रयास करते हुए विभिन्न वादों में समन्वय स्थापित किया । उनमें अथाह बुद्धि थी । कुछ करने का साहस था । इसीलिए प्रत्यक्ष अनुभव ,सूक्ष्म अंवेक्षण, गहन अनुशीलन के साथ लोकमंगल हेतु कवित्व , धर्म तथा भक्ति से समाज में सफल प्रयास किया । द्वैत – अद्वैत, विद्या तथा अविद्या माया, जगत की सत्यता तथा असत्यता, माया तथा प्रकृति का समन्वय, भाग्य तथा पुररुषार्थ का समन्वय, जीवन का भेद – अभेद , मानवतावाद का समन्वय, भोग तथा त्याग का समन्वय , राजतंत्र तथा जनतंत्र में समन्वय आदि पर चिंतन मनन के उपरांत अपना सिद्धांत व्यक्त किया ।

तुलसीदास जी ने भी जीवन का आधार समन्वय पर बल दिया । सीधे–सादे विनम्र होकर अपनी से किसी को कष्ट नहीं पहुँचाकर उन्होंने जो कहा वह सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय रहा ।

काव्य तथा संगीत का समन्वय

शंकरदेव द्वारा रचित बरगीत और भटिमा शास्त्रीय राग – ताल पर आधारित है । ब्रजबुलि भाषा में रचित आध्यात्मिक भावसंपन्न ऐसे गीत सुनकर श्रोताओं को शांति मिलती है । मानव जीवन की अधिकाधिक रूपों का उद्घाटन इन गीतिन में हुआ है । उनकी दृष्टि जीवन के हर क्षण पर पड़ी । इसमें व्यक्तिगत, पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षण के चित्र मिल जाते हैं ।

महान कवित या गीतों की एक विशेषता यह होती है कि इनकी किसी भी पंक्ति को अगर अलग किया जाता है तब भी उसका अर्थ और तात्पर्य बरकरार रहता है । शंकरदेव कृत अनेक पंक्तियाँ आज भी समाज में महान वाणी कि तरह प्रयुक्त होते हैं । उदाहरण के लिए–

अपुनि बयस होले बुद्धि हब भाल (प्रह्लाद चरित्र)
तनु उपज्न्ते मृत्यु उपजे लगते (दशम स्कंध भागवत)
बर बर पंडितो मरय स्थाने स्थाने (चतुर्थ स्कंध भागवत)

विभिन्न राग–रागिनियों में बंधे उनके गीत अलग अलग समय के लिए अलग अलग स्वरों में गाने के लिए रखे गये हैं ।

तुलसीदास जी ने भी आत्माभिव्यक्ति गीतों में व्यापक जीवन दृष्टि को दर्शाया है । उनमें संगीत तथा कला का अपूर्व संयोजन हुआ है । कहीं कहीं पर कथात्मक गीत हैं तो कहीं भक्तिभावमय वर्णन है । इसमें दीनता ,भगवान कि महिमा का गान किया गया है ।

गीतिकाव्य की सारी विशेषताएँ जैसे कि संगीतात्मकता , रागात्मक अनुभूति, प्रभावन्विति, जीवन की आंशिक अभिव्यक्ति इनमें मौजूद है । उनकी कला का चरम शिखर 'रामचरित मानस' और 'विनयपत्रिका' गीति–प्रधान रचना है । पद–रचना को आकर्षक बनाने के लिए, रस तथा भाव–सृष्टि की वर्षा करने हेतु इनका सृजन हुआ है ।

आदर्श और यथार्थ का समन्वय

दोनों ही कवि कोरे आदर्शवादी नहीं हैं । कहीं कहीं पर उन दोनों ने बहुत ऊंचे स्तर पर जाकर भागवत के गुणों का बखान किया है और भगवान के आदर्श रूप का उद्घाटन किया है । जीव की सांसरिक दुरूख ,वेदना को अंकित कर समाज की परिस्थितियों का भी चित्रण किया है ।

यत जीव जंगम कीट पतंगम
अग नग जग तेरि काया
सबकहु मारि पुरित ओहे उदर
नाहि करत भूत दाया
ईश स्वरुपे हरि सब घटे बैठह
येचन गगन बियापि । (शंकरदेव)

शंकरदेव के समान ही तुलसीदास ने लिखा है –

कबहुंक हौं यह रहनी रहौंगे
श्री रघुनाथ कृपालु कृपातें, संत सुभाव गहौंगो
जथालाभ संतोष सदा काहूँसों न कछु न चहौंगो
परहित निरत निरंतर
मन–क्रम–वचन नेम निबहौं गो ।

साहित्यिक भाषा और जन – भाषा का समन्वय रू दोनों कवियों ने अपनी समन्वयात्मक प्रतिभा का परिचय भाषा के क्षेत्र में भी दिया है ।दोनों ने उसे विद्वानों एवं सामान्यजनों के लिए समान रूप से उपयोगी बनाने के लिए उसमें संस्कृत गर्भित तथा बोलचाल की शब्दावली का प्रयोग किया है । साहित्यिक भाषा का एक उदाहरण देखिए –

श्री रामचन्द्र कृपालु मजु मन ,हरन भवभय–दारून
नवकंज – लोचन, कंजमुख, करकंज पदकंजारून ॥
कंदर्प –अगणित –अमित –छवि, नवनील नीरद सुंदर
पर पीत मानहु तड़ित रुचि सुचि नौमि जनक – सुतावर।
(तुलसी)

श्रवण कीर्तन स्मरण विष्णुर
अर्चन पद सेवन
दास्य सखित्व वन्दन विष्णुर
करिब देहा अर्पण । (शंकरदेव)

जन–भाषा का एक उदाहरण देखिए –

जन्म कौ भूखो भिखारी हों गरीब – निवाज ।
पेर भरि तुलसीहिं जेंवाइय भागती –सुधा –सुजान ॥
(तुलसी)

ए भव गहन वन
अति मोह पाशे छन्न
ताते हामु हरिणो बेड़ाई
फंदिलो मायार पाशे
कल व्याधे धाया आसे
कम क्रोध कुत्ता खेदि खाइ ।
(शंकरदेव)

अतः संक्षेप में हम कह सकते हैं कि प्राचीन काल से लेकर आजतक विश्व में जिन महापुरुषों ने जन–जागरण का बीड़ा उठाया है उनमें पूर्वोत्तर प्रांत के निवासी श्रीशंकरदेव और उत्तर भारत के निवासी संतकवि गोस्वामी तुलसीदास जी अन्यतम हैं । इन दोनों ने अपनी वाणी तथा रचनाओं द्वारा जनता में जागृति लाने की कोशिश की । महान पुरुषों का कर्म कभी तोड़ने का नहीं होता वरन जोड़ने का होता है । वैचित्रमय भारत जो सामाजिक और भौगोलिक कारणों से खंड – खंड में विभाजित है उसे एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयास जी –जान लगाकर दोनों ही संतकवियों ने की है । 'एक ह्रदय हो भारत जननी' कथन का पूर्णतरू पालन ही दोनों का ध्येय था । परम वैष्णव कृष्ण और राम के भक्त दोनों महापुरुषों ने सहज सरल भाषा को अपनाकर अपने कर्म द्वरा मध्यकाल से ही विशाल धर्मप्राण जनता में नवीन प्राण का संचार किया । भारत आज जो कुछ भी है वह उनकी ही बदौलत है । विषम परिस्थितियों का सामना करते हुए धर्म,गुरु,समाज,मानवता का ही नहीं वरन अन्य दिशाओं में भी समन्वय लाने में नैतिक संरक्षक की भूमिका दोनों ने अदा की है । शांति तथा उन्नति में दोनों का योगदान अतुलनीय है ।

सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन में सुख –समृद्धि चिरस्थायी करने के पीछे उनका दृष्टिकोण और आस्था उनके गहन अध्ययन और मनन का परिणाम है । महान विचारकों में जो गुण होते हैं उसे इन दोनों मनीषियों की प्रेरणास्पद वाणियों से ग्रहण कर हम सच्चे जीवन जीने की कला को अपनाकर समाज में समन्वयवाद लाने की प्रक्रिया में अपना योगदान दे सकेंगें ।

निष्कर्ष

अतः हम कह सकते हैं कि प्राचीन काल से लेकर आजतक विश्व में जिन महापुरुषों ने जन–जागरण का बीड़ा उठाया है उनमें पूर्वोत्तर प्रांत के निवासी श्रीशंकरदेव और उत्तर भारत के निवासी संतकवि गोस्वामी तुलसीदास जी अन्यतम हैं । इन दोनों ने अपनी वाणी तथा रचनाओं द्वारा जनता में जागृति लाने की कोशिश की । महान पुरुषों का कर्म कभी तोड़ने का नहीं होता वरन जोड़ने का होता है । वैचित्रमय भारत जो सामाजिक और भौगोलिक कारणों से खंड दृ खंड में विभाजित है उसे एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयास जी दृजान लगाकर दोनों ही संतकवियों ने की है । 'एक ह्रदय हो भारत जननी ' कथन का पूर्णतरू पालन ही दोनों का ध्येय था । परम वैष्णव कृष्ण और राम के भक्त दोनों महापुरुषों ने सहज सरल भाषा को अपनाकर अपने कर्म द्वरा मध्यकाल से ही विशाल धर्मप्राण जनता में नवीन प्राण का संचार किया । भारत आज जो कुछ भी है वह उनकी ही बदौलत है । विषम परिस्थितियों का सामना करते हुए धर्म,गुरु,समाज,मानवता का ही नहीं वरन अन्य दिशाओं में भी समन्वय लाने में नैतिक संरक्षक की भूमिका दोनों ने अदा की है । शांति तथा उन्नति में दोनों का योगदान अतुलनीय है । सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन में सुख दृसमृद्धि चिरस्थायी करने के पीछे उनका दृष्टिकोण और आस्था उनके गहन अध्ययन और मनन का परिणाम है । महान विचारोकों में जो गुण होते हैं उसे इन दोनों

मनीषियों की प्रेरणास्पद वाणियों से ग्रहण कर हम सच्चे जीवन जीने की कला को अपनाकर समाज में समन्वयवाद लाने की प्रक्रिया में अपना योगदान दे सकेंगें ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गोस्वामी तुलसीदास – रामचंद्र शुक्ल
2. तुलसी–काव्य–मीमांसा – उदयभानु सिंह
3. तुलसीदास और उनका युग – राजपति दीक्षित
4. श्री श्री शंकरदेव : डॉ० महेश्वर नेओग : रामधेनु प्रकाशन
5. असमीया साहित्यर समीक्षात्मक इतिवृत्त : डॉ० सत्येन्द्र नाथ शर्मा
6. महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव रू रामनिरंजन गोयेंका
7. असमर संस्कृति रू डॉ० लीला गोगोई ।